



आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597

खंड 6/अंक 1/मार्च 2026

Received: 18/03/2026; Revised: 21/03/2026; Accepted: 24/03/2026; Published: 28/03/2026

चाय बागान में सिसकता जनजीवन : एक अध्ययन

अर्चना विश्वकर्मा

शोधार्थी, हिंदी विभाग

तेजपुर विश्वविद्यालय , तेजपुर

अर्चना विश्वकर्मा, चाय बागान में सिसकता जनजीवन : एक अध्ययन, आखर हिंदी पत्रिका, खंड 6/अंक 1/मार्च 2026,(120 -125)

<https://doi.org/10.5281/zenodo.19500513>



This work is licensed under CC BY-NC 4.0

सारांश: पूर्वोत्तर भारत विशेषकर अपनी प्राकृतिक सौंदर्य और हरियाली के लिए सम्पन्न माना जाता है। पूर्वोत्तर भारत के सात राज्यों में से एक राज्य असम चाय बागान की खूबसूरती के लिए विख्यात है। चाय बागान की खूबसूरती तो देश-विदेश तक मशहूर हैं लेकिन उस चाय बागान को खूबसूरत बनाने वाले लोगों की स्थिति कितनी दयनीय है उनसे लोग मुख्यतः अनभिज्ञ और अपरिचित हैं। चाय बागान में काम करने वाले लोगो को मूलभूत सुविधाएं भी उन्हें नहीं मिल पाती हैं भले ही , साहित्य समाज का दर्पण है और समाज मे घटित घटनाओं का विवरण साहित्य में दर्ज होता है परन्तु ऐसा देखने में आया है कि चाय बागान में काम करने वाला समाज साहित्य की मुख्यधारा में अपनी उपस्थिति नहीं दर्ज करा सका है इसके भिन्न-भिन्न कारण हो सकते हैं इस शोध पत्र में इन्हीं कारणों का विस्तृत विवेचन किया जाएगा साथ ही चाय बागान के जनजीवन को व उनकी वास्तविक परिस्थितियों को जानना और समझना इस शोध पत्र का उद्देश्य है।

बीज शब्द :- चाय बागान, जनजीवन, बंधुवा मजदूर, त्रासदी

भारत में चाय की कितनी अहमियत है इससे शायद ही कोई अपरिचित होगा। अमूमन लोग रोजमर्रा की जीवन में चाय पीना पसंद करते हैं, इसलिए चाय छोटी सी दुकान से लेकर बड़े रेस्तरां तक बिकती है। भारत में चाय बागान की स्थापना और विकास की अपनी एक अनोखी कथा है। कुछ अंग्रेज अधिकारी जब

व्यापार के सिलसिले में या पर्यटन के लिए भी चीन जाते थे तो वहाँ से चाय के पौधे भी लाते और अपने घर में लगाते लेकिन बहुत देखरेख के बावजूद भी चाय का पौधा नहीं बचता था। 1830 तक चीन से ही चाय पत्ती का निर्यात किया जाता था लेकिन बाद के दिनों में चाय के व्यापार में चीन सरकार के मनोभाव परिवर्तन होने लगा इससे अंग्रेज समझ चूके थे कि चाय उद्योग पर ईस्ट इंडिया कंपनी का पूर्ण अधिकार हो पाना संभव नहीं। 1834 में लॉर्ड वेष्टिक के शासनकाल में 13 लोगों को लेकर एक अनुसंधान कमिटी का गठन किया गया उक्त कमिटी के निर्माण के बाद चाय की खोजबीन में तत्परता आयी जिसमें एक दल चीन की ओर और दूसरा दल असम की ओर खोज करने गए। खोजबीन के दौरान सबसे पहले पता चला कि असम में सिंगफो जाति के लोगों के अंचलों में चाय के पेड़ हैं इसके बाद सिंगफो जाति से संपर्क के बाद पता चला कि सिंगफो जाति के लोग पहले से ही चाय की खेती करते आ रहे हैं। सिंगफो जाति के लोग वर्मी, कुकी और चीन समूह के ही हैं और ये लोग बौद्ध धर्मावलंबी थे। इस प्रकार राबर्ट ब्रूस ने चाय के पेड़ पाए जाने वाले जगह का भ्रमण किया इस काम के लिए उन्हें एक स्थानीय अन्वेषक मणिराम देवान ने सहायता की। चाय के पौधे, गोटी (बीज) को इकट्ठा करके भारत की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता के बोटैनिकल गार्डन में जाँच के लिए भेजा गया जिससे रिपोर्ट मिली कि यह चीन देश में पायी जाने वाली चाय की ही एक प्रजाति है। इस प्रकार अंग्रेजों ने 1839 में असम टी. कंपनी की स्थापना की। चाय की खेती के लिए कुछ कारीगर और चाय की खेती के विषय में जानकार श्रमिक चीन से ही लाया गया और साथ ही असम के ही कुछ जनजाति को भी शामिल किया गया। धीरे धीरे चाय से होने वाले मुनाफे को बढ़ाने के लिए पश्चिम बंगाल, सिक्किम, कुमाऊं, देहरादून, गढ़वाल, शिमला, कुल्लू, रामगढ़ आदि जगहों में चाय बागान की स्थापना की गई लेकिन सभी जगह सफलता नहीं मिली। चाय बागान के श्रमिक ज्यादातर कृषक होने के कारण काम में नियमित न थे और न ही स्थानीय लोगों को जबरन मनचाहा काम लगाना आसान था। इसलिए कम्पनी के लोगों ने बाहर से कुल्ली (मजदूर) लाने का निर्णय किया निर्णय के पश्चात छोटानागपुर, सिंहभूम, लोहारदागा, हजारीबाग, पुरूलिया, भागलपुर, मेदिनीपुर, पुणे, नेपाल के कुछ प्रांत आदि क्षेत्र से कुल्ली लाने के लिए सरदार टोली का गठन हुआ जिन्हें अड़काटी या दलाल भी कहा जाता था। ऐसे लोगों को सरदार बनाया जाता जो चालाक चतुर थे जिन्हें स्थानीय भाषा का ज्ञान था। कंपनी के लोगों ने टी डिस्ट्रिक्ट लेबर एसोशिएशन के नाम से देश भर के भिन्न-भिन्न जगह जाकर 'डिपू घर' का निर्माण किया अर्थात् ऐसा स्थान जहाँ लोगों को इकट्ठा करके चाय बागान में काम करने का फायदा और सुविधा का प्रलोभन दिया जाता। लोगों को बहला फुसलाकर चाय बागान की ओर खींचने का काम सरदार टोली का ही था। चाय बागान के कुल्ली के रूप में ऐसे लोगों को चुना गया जो गरीब, दरिद्र, मेहनती और निम्न जाति के थे भूखमरी और महामारी से जिनका परिवार जूझ रहा था।

डिपू घर में अधिकांश कुल्ली जमा हो जाने के बाद उन्हें रेल में बंद करके असम और भूटान के चाय बागानों में भेड़-बकरियों की तरह ले जाया जाता था उनके लोकगीतों में भी यह देखने को मिलती हैं उपर्युक्त भाव से ध्वनित पंक्तियां दृष्टव्य हैं - "असम राजी कादर/भूटान राजी कादर/ जनम जुग पर ओर कमाल रे/ जनम जुग पर ओर कमाल।"

(अनु असम भूटान जा रहे हैं जीवन में कभी फिर वापस लौटेंगे या नहीं) [1]

अपने मूल स्थान को छोड़कर लोगों ने रोजगार की तलाश में चाय बागान की ओर प्रस्थान तो किया पर उन्हें बहुत सारे कष्टों का सामना करना पड़ा। चाय बागान की ओर निकले कुछ लोग तो जाते समय प्रतिकूल मौसम की मार से ,भूख और रोग के कारण रास्ते में ही मर गए लेकिन जाने का क्रम रूका नहीं । गंतव्य में पहुंचने के बाद भी उनके लिए उचित व्यवस्था नहीं थी,खाना कम मिलता था और काम ज्यादा करना पड़ता। उनपर अत्यधिक शोषण और अत्याचार होता था भागने की कोशिश करने पर भी दर्दनाक सज़ा दी जाती थी उनके ऊपर मालिकों का ही हक था एक तरह से वे लोग गुलामी की जिंदगी ही जी रहे थे और इतने वर्षों बाद भी चाय बागान समाज और उनके लोगों की स्थिति में कुछ खास परिवर्तन नहीं आया है। आज भी चाय बागान में काम करने वाले लोग शोषण चक्र से घिरे हुए हैं, फर्क सिर्फ इतना ही रह गया है कि, पहले अंग्रेज शोषण करते थे और अब अपने ही देश के लोग उनका शोषण कर रहे हैं। शोषण का यह क्रम पीढ़ी दर पीढ़ी चलते रहता है।

चाय बागान के मजदूरों की की जिंदगी मूल्यहीन ही मानी जाती रही है। चाय बागान के कवि रामकुमार राणा जी जो खुद एक चाय बागान श्रमिक रह चुके हैं अपनी कविता में जीवन के कटु सत्य को इस प्रकार दर्शाते हैं -“ठण्डा गरम बरसात में/ हाड़तोड़ मेहनत करैय/चाह बगानिया मन कर/जिनगी का एक सस्ता /कि दुख देवथे किस्ती में “(अनु जी-तोड़ मेहनत करने है / हम चाय बागान के लोगों की जिंदगी इतनी सस्ती है कि किश्त में दुख दे रहे हैं)[2]

आज भी चाय बागानों में कठोर अनुशासन है समय से तीन -चार मिनट भी देरी से काम पर पहुंचने से उनकी मजदूरी में कटौती होती है और तो और साहेब(मेनेजर) के सामने मजदूर पहने हुए टोपी को उतारते हैं , साइकिल से कहीं जा रहे हो तो उतरकर पैदल चलते हैं इस तरह मालिक के सामने झुककर रहते हैं। छोटी - छोटी गलतियों के लिए कठोर दण्ड दिया जाता है।आठ घंटे खड़े होकर उन्हें काम करना पड़ता है और पच्चीस के .जी . चाय पत्ती तोड़नी पड़ती है चाहे चिलचिलाती धूप हो या ठिठुरती सर्दी। पच्चीस के .जी से कम चायपत्ती होने पर उनको पूरा वेतन नहीं मिलता।बरसात के दिनों में मात्र एक छाता ही उनका सहारा होता है उन दिनों वे पूरी तरिके से भींगते हुए पत्ती तोड़ते हैं जिससे कई बिमारियों के चपेट में आ जाते हैं । बिमारियों के उपचार का दायित्व भी चाय बागान कंपनी या मालिक पक्ष नहीं लेते जबकि दायित्व लेने का कानूनी प्रावधान है - “There is a provision in PLA(1951 and 1956) that the tea garden authority will provide medical facilities to workers and facilities to women during maternities benefit.Although there are no medical facilities and qualified doctors in the most of the tea gardens.” [3]

एक तरफ इसी देश के किसी बड़े रेस्तरां में एक कप चाय 500 रु से भी अधिक में मिलती है वहीं दूसरी तरफ पच्चीस किलो चाय पत्ती का मूल्य मात्र 232 रू है और समय समय पर वेतन बढ़ाने के लिए हड़ताल की जाती है तो मात्र 3-4 रूपए की बढ़ोतरी कर दी जाती है। चाय बागान की स्त्री नवजात शिशु

को अपनी पीठ पर बांधकर पत्ती तोड़ती है उसे मालिक पक्ष से किसी प्रकार की रियायत नहीं मिलती इस अमानवीय व्यवहार की अभिव्यक्ति कवियत्री बिमला भोक्ता इस प्रकार करती है -“मुझे नसीब नहीं जानसन की पाउडर और क्रीम!/मुझे नसीब नहीं लाल -लाल और गुलाबी गाल!/मुझे तो नसीब है चिलचिलाती धूप में/मेरी मा के बेतरा में दुबककर धूप सेंकना!/मुझे नसीब है माँ के बेतरे में/माँ की पीठ का पसीना!”/[4]

(बेतरे -बच्चे को पीठ में बांधने वाला कपड़ा)

हम देख सकते हैं कि चाय बागान में लोगों की स्थिति कितनी सोचनीय है। बागान से मिले पैसे से उनका परिवार ठीक से नहीं चल पाता इसलिए घर का कोई सदस्य किसी दूसरे राज्य में काम करने के लिए जाता है वहाँ भी उनके साथ कम जुल्म नहीं होता। कई बार तो लोग अपने घर वापस ही नहीं आते वे कभी मारे जाते हैं या फिर कोई दलाल उन्हें बेच देता है। इन दिनों मानव तस्करी के मामले चाय बागानों में बढ़ते ही जा रहे हैं, जिसमें लड़कियों की संख्या अधिक है। बिर्ख खड़का डुवसेली अपनी कविता में इसे व्यक्त करते हुए लिखते हैं -“जंगल के बीच/ नदी के किनारे/एक लाश मिली/सड़ गई है/लड़की की है “[5]

इस तरह की अमानवीय घटनाओं और जागरूकता की कमी के कारण चाय बागान का समाज कुंद और भयावह होते जा रहा है। जब-जब चाय बागान के लोगों ने अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाई है तब - तब उन्हें संकटों का सामना करना पड़ा है संगठित होकर कुछ लोग मालिकों के खिलाफ कोई काम करने पर मालिक रातों रात बागान बंद करके फरार हो जाते हैं और उनके आमदनी का रास्ता भी बंद हो जाता है इसलिए भी चाय बागान में लोग विरोध करने से डरते हैं चुपचाप सहते हैं।सामंती शासन और शोषण भरी जिंदगी होने के बावजूद भी चाय बागान के लोगों ने साहित्य को समृद्ध करने में भी अपना योगदान दिया।चाय बागान के लोगों ने कविता, कहानी नाटक आदि विधाओं की रचना भी की जिसमें उनका संघर्षपूर्ण जीवन व्यक्त है। उनकी कृतियों में उनकी करुण व्याथा साफ़ दिखाई देती है। कवियत्री ऐमलेन बोदरा अपनी कविता में लिखती हैं -“हमें दंत मंजन बनाकर/चमकाते हैं अपने दांत/और उन्हीं नुकीले दांतों से/चबा जाते हैं हमारे भविष्य/अपने कुम्बा जैसे पेट में/पचा जाते हैं हमारे अधिकार “[6]

इस तरह से कविता में उनका आक्रोश का स्वर झलकता है। तमाम प्रकार की समस्याओं से घिरे होने के बावजूद भी चाय बागान के लोग खुश रहने का मौका नहीं गंवाते। चाय बागान में काम करवाने के लिए भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से कुल्ली लाया गया था ऐसे में जब अलग अलग सांस्कृतिक सामाजिक पृष्ठभूमि के लोग एक जगह बसने लगे तो चाय बागान में मिश्रित समाज का निर्माण हुआ इसलिए भी चाय बागान में दर्श - औंसी(नेपाली समुदाय का लोकपर्व), करम (आदिवासी समुदाय का लोकपर्व), होली और छठ पर्व जैसे कई त्योहार गीत गाकर, और नाचते हुए मादल(ढोल) बजाकर बड़े धूमधाम से मनाते हैं। लगभग डेढ़ सौ वर्ष पुराने इनके इतिहास में संघर्षपूर्ण जीवन की झांकी दिखाई देती है। स्वतंत्रता संग्राम के समय में भी कई सारे बगानिया लोगों ने अपना भरपूर योगदान दिया,हड़ताले की, गोली भी खाई पर शायद ही उनका नाम भी कोई जानता हो। इसी तरह साहित्य तो लिखे गए हैं लेकिन उन्हें वैसा बड़ा मंच नहीं मिला जहां वे अपनी बातों को बेबाकी से रख सके। पुस्तकें भी कुछ प्रकाशित हुई हैं और कुछ आज तक आर्थिक अभाव

और मुख्यधारा से न जुड़ सकने के कारण अप्रकाशित ही रह गई फलस्वरूप चाय बागान का साहित्य चाय बागान में ही रह गया। चाय बागान के कुछ बुद्धिजीवियों द्वारा समय समय पर साहित्य कार्यक्रम का आयोजन भी किया जा रहा है पत्रिकाएं भी निकलती है लेकिन आर्थिक अभाव और उचित व्यवस्था की कमी के कारण कम समय में ही बंद हो जाती है।

चाय बागान के लोगों की भाषा अनगढ़ है भिन्न-भिन्न क्षेत्रों और सांस्कृतिक समुदायों से जुड़े होने के कारण उनकी भाषा में सादरी, नेपाली, खड़िया, बांग्ला, असमिया, भोजपुरी, हिंदी आदि कई भाषाओं और बोलियों का सम्मिश्रण रहता है जिसे लोग बगानिया भाषा कहते हैं। इसी भाषा कुछ लोग मातृभाषा के रूप में प्रयोग करते हैं और कुछ लोग संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग करते हैं। बोलचाल के साथ साथ लेखन के क्षेत्र में भी इस भाषा की छाप मिलती है, कोई हिंदी में भी कविता लिख रहा हो तो बगानिया शब्द स्वाभाविक रूप से जुड़ जाते हैं।

अतः यह देख सकते हैं कि कालचक्र के प्रवाह से भी चाय बागान की स्थिति और बागान के श्रमिक प्रति अमानवीय व्यवहार में किसी तरह का कोई परिवर्तन नहीं आया। वर्तमान समय में भारत में चाय उत्पादन से करोड़ों रूपए का मुनाफा होता है, लेकिन क्या कारण है कि उस मुनाफे का लाभ मजदूरों को नहीं मिल रहा? वे कौन से सूत्र हैं जिन्होंने आज भी उन लोगों की अहमियत मात्र 'उत्पादक' के रूप में ही सीमित रखा है? क्या उनकी किस्मत में बंधुवा मजदूर बनकर हमेशा अत्याचार सहने के लिए है? इतनी जओदूत के बावजूद भी वे अपनी समस्याओं पर भी कलम चला रहे हैं, लेकिन उसे पढ़ने-समझने वाले लोगों की संख्या बहुत कम है। बुद्धिजीवी और विकसित समाज को यह समझने की जरूरत है कि उन मजदूरों की रगों में भी वही खून है, जो उनके में है, इसलिए आज जब समाज 21वीं सदी में है तब उन मजदूरों के मन की व्यथा को प्रत्यक्ष रूप से पहचानने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. कोड़ा राजी. निदेशक. बिजू टोप्पो देखा 10/01/2024 (प्रातः 6 बजे)
<https://youtu.be/BxhKqSFXAv8?si=eA9F53xAsQJxQbW7>
2. राणा, रामकुमार, निर्वाचित कविता बईमहल आपनकथा .2023 .पृष्ठ संख्या 6
3. प्रॉबलम्स ऑफ टी गॉर्डन्स वीमेन. देखा 16-02-2024. (संध्या 7:30 बजे)
https://ir.nbu.ac.in/bitstream/123456789/4043/17/17_chapter%207.pdf.
4. भोक्ता, बिमला, मेरी माँ का बेतरा. बंगाल में हिंदी दलित और आदिवासी कविता. स.डॉ कार्तिक चौधरी और संदीप प्रसाद. प्रथम संस्करण. दिल्ली अधिकरण प्रकाशन, 2021. पृ.सं 145.
5. डुवर्सेली खड्का, बिर्ख, विस्खलन. प्रथम संस्करण. दिल्ली आधारशिला प्रकाशन, 2021. पृ.सं 30.
6. बोदरा ऐमलेन, झण्डे. प्रतिरोध में कविता. सं. रंजीत वर्मा. प्रथम संस्करण. वाराणसी अगोरा प्रकाशन 2021. पृ.सं 106.

सहायक ग्रंथ:-

1.गोले,काजीमान, चियाकमानको सेरोफेरो . प्रथम संस्करण.डुवर्स, पश्चिम बंगाल डुवर्स नेपाली साहित्य विकास समिति,2017.
